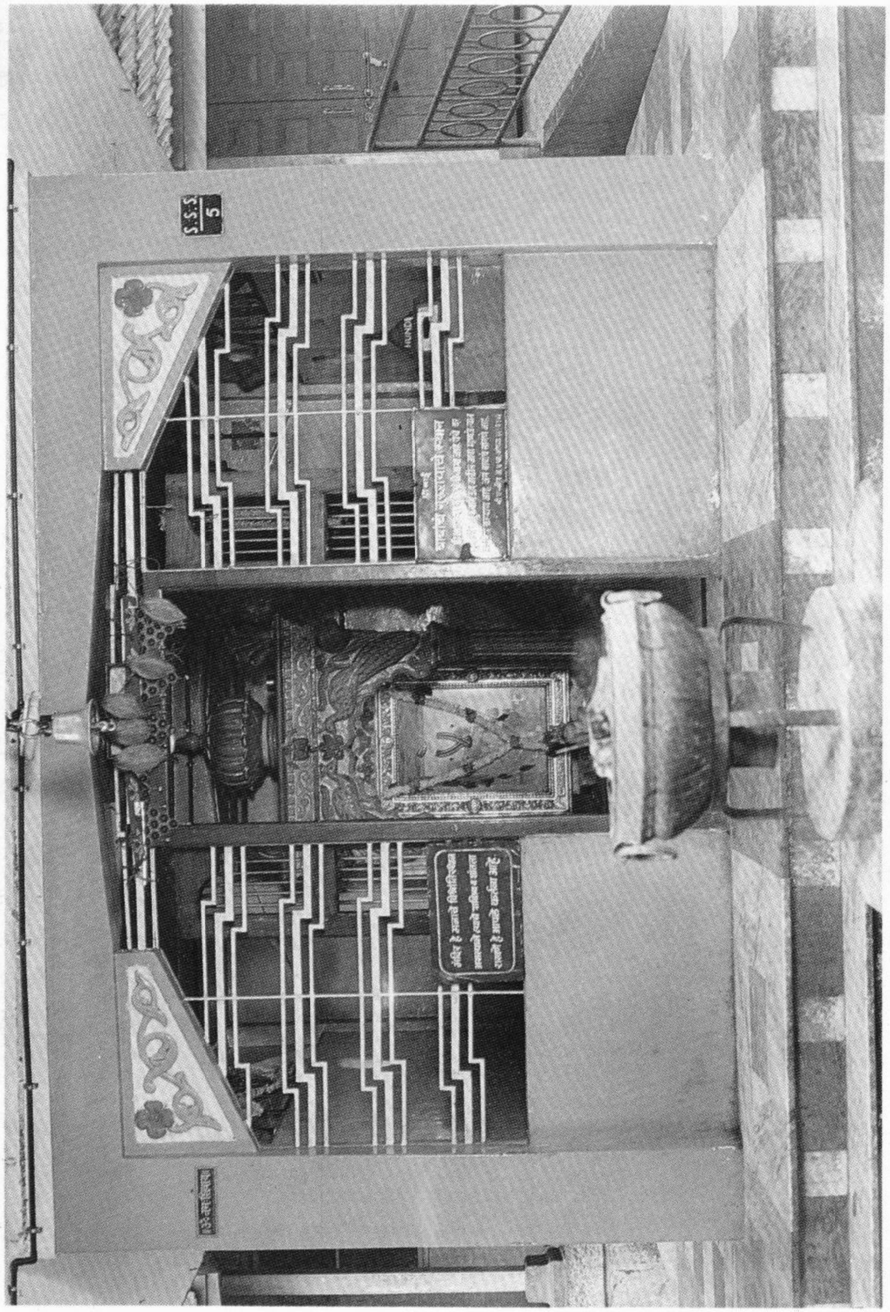

अध्याय – ५

चाँद पाटील की बारात के साथ श्री साई बाबा का पुनः आगमन, अभिनंदन तथा 'श्री साई' शब्द से सम्बोधन, अन्य संतों से भेंट, वेश-भूषा व नित्य कार्यक्रम, पादुकाओं की कथा, मोहिद्दीन के साथ कुश्ती, मोहिद्दीन का जीवन परिवर्तन, जल का तेल में रूपान्तर, मिथ्या गुरु जौहरअली।

जैसा गत अध्याय में कहा गया है, मैं अब श्री साई बाबा के शिरडी से अंतर्द्धान होने के पश्चात् उनका शिरडी में पुनः किस प्रकार आगम्न हुआ, इसका वर्णन करूँगा।

चाँद पाटील की बारात के साथ पुनः आगमन

जिला औरंगाबाद (निजाम स्टेट) के धूप ग्राम में चाँद पाटील नामक एक धनवान् मुस्लिम रहते थे। जब वे औरंगाबाद को जा रहे थे तो मार्ग में उनकी घोड़ी खो गई। दो मास तक उन्होंने उसकी खोज में घोर परिश्रम किया, परन्तु उसका कहीं पता न चल सका। अन्त में वे निराश होकर उसकी जीन को पीठ पर लटकाये औरंगाबाद को लौट रहे थे। तब लगभग १४ मील चलने के पश्चात् उन्होंने एक आम्रवृक्ष के नीचे एक फकीर को चिलम तैयार करते देखा, जिसके सिर पर एक टोपी, तन पर कफनी और पास में एक सटका था। फकीर के बुलाने पर चाँद पाटील उनके पास पहुँचे। जीन देखते ही फकीर ने पूछा "यह जीन कैसी?" चाँद पाटील ने निराशा के स्वर में कहा "क्या कहूँ? मेरी एक घोड़ी थी, वह खो गई है और यह उसी की जीन है।"

फकीर बोले– "थोड़ा नाले की ओर भी तो ढूँढ़ो।" चाँद पाटील नाले के समीप गये तो अपनी घोड़ी को वहाँ चरते देखकर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि फकीर कोई सामान्य व्यक्ति नहीं, वरन् कोई उच्च कोटि का मानव दिखलाई पड़ता है। घोड़ी को साथ लेकर जब वे फकीर के पास लौटकर आये, तब तक चिलम भरकर तैयार हो चुकी थी। केवल दो वस्तुओं की और आवश्यकता रह गई थी। एक तो

चिलम सुलगाने के लिये अग्नि और द्वितीय साफी को गीला करने के लिये जल की। फकीर ने अपना चिमटा भूमि में घुसेड़ कर ऊपर खींचा तो उसके साथ ही एक प्रज्वलित अंगारा बाहर निकला और वह अंगारा चिलम पर रखा गया। फिर फकीर ने सटके से ज्योंही बलपूर्वक जमीन पर प्रहार किया, त्योंही वहाँ से पानी निकलने लगा और उसने साफी को भिंगोकर चिलम को लपेट लिया। इस प्रकार सब प्रबन्ध कर फकीर ने चिलम पी और तत्पश्चात् चाँद पाटील को भी दी। यह सब चमत्कार देखकर चाँद पाटील को बड़ा विस्मय हुआ। चाँद पाटील ने फकीर से अपने घर चलने का आग्रह किया। दूसरे दिन चाँद पाटील के साथ फकीर उनके घर चला गया और वहाँ कुछ समय तक रहा। पाटील धूप ग्राम का अधिकारी था। उसके घर पर अपने साले के लड़के का विवाह होने वाला था और बारात शिरडी को जाने वाली थी। इसलिये चाँद पाटील शिरडी को प्रस्थान करने का पूर्ण प्रबन्ध करने लगा। फकीर भी बारात के साथ ही गया। विवाह निर्विघ्न समाप्त हो गया और बारात कुशलतापूर्वक धूप ग्राम को लौट आई। परन्तु वह फकीर शिरडी में ही रुक गया और जीवनपर्यन्त वहीं रहा।

फकीर को 'साई' नाम कैसे प्राप्त हुआ?

जब बारात शिरडी में पहुँची तो खंडोबा के मंदिर के समीप म्हालसापति के खेत में एक वृक्ष के नीचे ठहराई गई। खंडोबा के मंदिर के सामने ही सब बैलगाड़ियाँ खोल दी गईं और बारात के सब लोग एक-एक करके नीचे उतरने लगे। तरुण फकीर को उतरते देख म्हालसापति ने "आओ साई" कहकर उनका अभिनन्दन किया तथा अन्य उपस्थित लोगों ने भी 'साई' शब्द से ही सम्बोधन कर उनका आदर किया। इसके पश्चात् वे 'साई' नाम से ही प्रसिद्ध हो गये।

अन्य संतों से सम्पर्क

शिरडी आने पर श्री साई बाबा मसजिद में निवास करने लगे। बाबा के शिरडी में आने के पूर्व देवीदास नाम के एक सन्त अनेक वर्षों से वहाँ रहते थे। बाबा को वे बहुत प्रिय थे। वे उनके साथ कभी हनुमान मन्दिर में और कभी चावड़ी में रहते थे। कुछ समय के पश्चात् जानकीदास नाम के एक संत का भी शिरडी में आगमन हुआ। अब बाबा जानकीदास से वार्त्तालाप करने में अपना बहुत-सा समय व्यतीत करने लगे। जानकीदास भी कभी-कभी बाबा के स्थान पर चले आया करते थे और पुणताम्बे के श्री गंगागीर नामक एक पारिवारिक वैश्य संत भी बहुधा बाबा के पास आया-जाया करते थे। जब प्रथम बार उन्होंने श्री साई बाबा को बगीचा-सिंचन के लिये पानी ढोते देखा

तो उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ। वे स्पष्ट शब्दों में कहने लगे कि "**शिरडी परम भाग्यशालिनी है, जहाँ एक अमूल्य हीरा है।** जिन्हें तुम इस प्रकार परिश्रम करते हुए देख रहे हो, वे कोई सामान्य पुरुष नहीं हैं। अपितु यह भूमि बहुत भाग्यशालिनी तथा महान् पुण्यभूमि है, इसी कारण इसे यह रत्न प्राप्त हुआ है।" इसी प्रकार श्री अक्कलकोटकर महाराज के एक प्रसिद्ध शिष्य संत आनन्द नाथ, (येवलामठ) जो कुछ शिरडी निवासियों के साथ शिरडी पधारे, उन्होंने भी स्पष्ट कहा कि "**यद्यपि बाह्यदृष्टिसे ये साधारण व्यक्ति जैसे प्रतीत होते हैं, परंतु ये सचमुच असाधारण व्यक्ति हैं।** इसका तुम लोगों को भविष्य में अनुभव होगा।" ऐसा कहकर वे येवला को लौट गये। यह उस समय की बात है, जब शिरडी बहुत ही साधारण-सा गाँव था और साई बाबा बहुत छोटी उम्र के थे।

बाबा का रहन-सहन व नित्य कार्यक्रम

तरुण अवस्था में श्री बाबा ने अपने केश कभी भी नहीं कटाये और वे सदैव एक पहलवान की तरह रहते थे। जब वे राहाता जाते (जो कि शिरडी से ३ मील दूर है) तो वहाँ से वे गेंदा, जाई और जुही के पौधे मोल ले आया करते थे। वे उन्हें स्वच्छ करके उत्तम भूमि देखकर लगा देते और स्वयं सींचते थे। वामन तात्या नाम के एक भक्त इन्हें नित्य प्रति दो मिट्टी के घड़े दिया करते थे। इन घड़ों द्वारा बाबा स्वयं ही पौधों में पानी डाला करते थे। वे स्वयं कुएँ से पानी खींचते और संध्या समय घड़ों को नीम वृक्ष के नीचे रख देते थे। जैसे ही घड़े वहाँ रखते, वैसे ही वे फूट जाया करते थे, क्योंकि वे बिना तपाये और कच्ची मिट्टी के बने रहते थे। दूसरे दिन तात्या उन्हें फिर दो नये घड़े दे दिया करते थे। यह क्रम ३ वर्षों तक चला और श्री साई बाबा के कठोर परिश्रम तथा प्रयत्न से वहा फूलो का एक सुन्दर फुलवारी बन गई। आजकल इसी स्थान पर बाबा के समाधि-मंदिर की भव्य इमारत शोभायमान है, जहाँ सहस्रों भक्त आते-जाते रहते हैं।

नीम वृक्ष के नीचे पादुकाओं की कथा

श्री अक्कलकोट महाराज के एक भक्त, जिनका नाम भाई कृष्ण जी अलीबागकर था, उनके चित्र का नित्य-प्रति पूजन किया करते थे। एक समय उन्होंने अक्कलकोट (शोलापुर जिला) जाकर महाराज की पादुकाओं का दर्शन एवं पूजन करने का निश्चय किया। परन्तु प्रस्थान करने के पूर्व अक्कलकोट महाराज ने स्वप्न में दर्शन देकर उनसे कहा कि आजकल शिरडी ही मेरा विश्राम-स्थल है और तुम वहीं जाकर मेरा पूजन

करो। इसलिये भाई ने अपने कार्यक्रम में परिवर्तन कर शिरडी आकर श्री साईबाबा की पूजा की। वे आनन्दपूर्वक शिरडी में छः मास रहे और इस स्वप्न की स्मृति-स्वरूप उन्होंने पादुकायें बनवाईं। शके सं.१८३४ में श्रावण में शुभ दिन देखकर नीम वृक्ष के नीचे वे पादुकायें स्थापित कर दी गईं। दादा केलकर तथा उपासनी महाराज ने उनका यथाविधि स्थापना-उत्सव सम्पन्न किया। एक दीक्षित ब्राह्मण पूजन के लिये नियुक्त कर दिया गया और प्रबन्ध का कार्य एक भक्त सगुण मेरु नायक को सौंपा गया।

कथा का पूर्ण विवरण

ठाणे के सेवानिवृत्त मामलतदार श्री. बी.व्ही. देव, जो श्री साईबाबा के एक परम भक्त थे, उन्होंने सगुण मेरु नायक और गोविंद कमलाकर दीक्षित से इस विषय में पूछताछ की। पादुकाओं का पूर्ण विवरण श्री साई लीला भाग ११, संख्या १, पृष्ठ २५ में प्रकाशित हुआ है, जो निम्नलिखित हैः- शक १८३४ (सन् १९१२) में बम्बई के एक भक्त डॉ. रामराव कोठारे बाबा के दर्शनार्थ शिरडी आये। उनका कम्पाउंडर और उनके एक मित्र भाई कृष्ण जी अलीबागकर भी उनके साथ में थे। कम्पाउंडर और भाई की सगुण मेरु नायक तथा जी.के. दीक्षित से घनिष्ठ दोस्ती हो गई। अन्य विषयों पर विवाद करते समय इन लोगों को विचार आया कि श्री साई बाबा के शिरडी में प्रथम आगमन तथा पवित्र नीम वृक्ष के नीचे निवास करने की ऐतिहासिक स्मृति के उपलक्ष्य में क्यों न पादुकायें स्थापित की जायें? अब पादुकाओं के निर्माण पर विचार विमर्श होने लगा। तब भाई के मित्र कम्पाउंडर ने कहा कि यदि यह बात मेरे स्वामी कोठारे को विदित हो जाय तो वे इस कार्य के निमित्त अति सुन्दर पादुकायें बनवा देंगे। यह प्रस्ताव सबको मान्य हुआ और डॉ. कोठारे को इसकी सूचना दी गई। उन्होंने शिरडी आकर पादुकाओं की रूपरेखा बनाई तथा इस विषय में उपासनी महाराज से भी खंडोबा के मंदिर में भेंट की। उपासनी महाराज ने उसमें बहुत से सुधार किये और कमल फूलादि खींच दिये तथा नीचे लिखा श्लोक भी रचा, जो नीम वृक्ष के माहात्म्य व बाबा की योगशक्ति का द्योतक था, जो इस प्रकार हैः-

सदा निंबवृक्षस्य मूलाधिवासात्
सुधास्त्राविणं तिक्तमप्यप्रियं तम्।
तरुं कल्पवृक्षाधिकं साधयन्तं
नमामीश्वरं सद्गुरुं साईनाथम्॥

अर्थात्-मैं भगवान साईनाथ को नमन करता हूँ, जिनका सान्निध्य पाकर नीम वृक्ष कटु तथा अप्रिय होते हुये भी अमृत वर्षा करता था। (इस वृक्ष का रस अमृत कहलाता है) इसमें अनेक व्याधियों से मुक्ति देने के गुण होने के कारण इसे 'कल्पवृक्ष' से भी श्रेष्ठ कहा गया है।

उपासनी महाराज का विचार सर्वमान्य हुआ और कार्य रूप में भी परिणत हुआ। पादुकायें बम्बई में तैयार कराई गईं और कम्पाउंडर के साथ शिरडी भेज दी गईं। बाबा की आज्ञानुसार इनकी स्थापना श्रावण की पूर्णिमा के दिन की गई। इस दिन प्रातःकाल ११ बजे जी.के. दीक्षित उन्हें अपने मस्तक पर धारण कर खंडोबा के मंदिर से बड़े समारोह और धूमधाम के साथ द्वारका माई में लाये। बाबा ने पादुकायें स्पर्श कर कहा कि "ये भगवान के श्री चरण हैं। इनकी नीम वृक्ष के नीचे स्थापना कर दो।" इसके एक दिन पूर्व ही बम्बई के एक पारसी भक्त पास्ता शेट ने २५ रुपयों का मनीआर्डर भेजा। बाबा ने ये रुपये पादुकाओं की स्थापना के निमित्त दे दिये। स्थापना में कुल १०० रुपये व्यय हुये, जिनमें ७५ रुपये चन्दे द्वारा एकत्रित हुए। प्रथम पाँच वर्षों तक डॉ. कोठारे दीपक के निमित्त २ रुपये मासिक भेजते रहे। उन्होंने पादुकाओं के चारों ओर लगाने के लिये लोहे की छड़ें भी भेजीं। स्टेशन से छड़ें ढोने और छप्पर बनाने का खर्च (७ रुपये ८ आने) सगुण मेरु नायक ने दिये। आजकल जरबाड़ी (नाना पुजारी) पूजन करते हैं और सगुण मेरु नायक नैवेद्य अर्पण करते तथा संध्या को दीपक जलाते हैं। भाई कृष्ण जी पहले अक्कलकोट महाराज के शिष्य थे। अक्कलकोट जाते हुए, वे शक १८३४ में पादुका स्थापन के शुभ अवसर पर शिरडी आये और दर्शन करने के पश्चात् जब उन्होंने बाबा से अक्कलकोट प्रस्थान करने की आज्ञा माँगी, तब बाबा कहने लगे, "अरे! अक्कलकोट में क्या है? तुम वहाँ व्यर्थ क्यों जाते हो? वहाँ के महाराज तो यहीं (मैं स्वयं) हैं।" यह सुनकर भाई ने अक्कलकोट जाने का विचार त्याग दिया। पादुकाएँ स्थापित होने के पश्चात् वे बहुधा शिरडी आया करते थे। श्री. बी.व्ही. देव ने अंत में ऐसा लिखा है कि इन सब बातों का विवरण हेमाडपंत को विदित नहीं था। अन्यथा वे श्री साई सच्चरित्र में लिखना कभी नहीं भूलते।

मोहिद्दीन तम्बोली के साथ कुश्ती और जीवन परिवर्तन

शिरडी में एक पहलवान था, जिसका नाम मोहिद्दीन तम्बोली था। बाबा का उससे किसी विषय पर मतभेद हो गया। फलस्वरूप दोनों में कुश्ती हुई और बाबा हार गये। इसके पश्चात् बाबा ने अपनी पोशाक और रहन-सहन में परिवर्तन कर दिया। वे कफनी

पहनते, लंगोट बाँधते और एक कपड़े के टुकड़े से सिर ढँकते थे। वे आसन तथा शयन के लिये एक टाट का टुकड़ा काम में लाते थे। इस प्रकार फटे-पुराने चिथड़े पहिन कर वे बहुत सन्तुष्ट प्रतीत होते थे। वे सदैव यही कहा करते थे कि "गरीबी अव्वल बादशाही, अमीरी से लाख सवाई, गरीबों का अल्ला भाई।" गंगागीर को भी कुश्ती से बड़ा अनुराग था। एक समय जब वह कुश्ती लड़ रहा था, तब इसी प्रकार उसको भी त्याग की भावना जागृत हो गई। इसी उपयुक्त अवसर पर उसे देव वाणी सुनाई दी "**भगवान् के साथ खेल में अपना शरीर लगा देना चाहिये।**" इस कारण वह संसार छोड़ आत्म-अनुभूति की ओर झुक गया। पुणताम्बे के समीप एक मठ स्थापित कर वह अपने शिष्यों सहित वहाँ रहने लगा। श्री साई बाबा लोगों से न मिलते और न वार्त्तालाप ही करते थे। जब कोई उनसे कुछ प्रश्न करता तो वे केवल उतना ही उत्तर देते थे। दिन के समय वे नीम वृक्ष के नीचे विराजमान रहते थे। कभी-कभी वे गाँव की मेंड़ पर नाले के किनारे एक बबूल-वृक्ष की छाया में भी बैठे रहते थे और संध्या को अपनी इच्छानुसार कहीं भी वायु-सेवन को निकल जाया करते थे। नीमगाँव में वे बहुधा बालासाहेब डेंगले के गृह पर जाया करते थे। बाबा श्री बालासाहेब को बहुत प्यार करते थे। उनके छोटे भाई, जिसका नाम नानासाहेब था, के द्वितीय विवाह करने पर भी उनको कोई संतान न थी। बालासाहेब ने नानासाहेब को श्री साई बाबा के दर्शनार्थ शिरडी भेजा। कुछ समय पश्चात् उनकी श्री कृपा से नानासाहेब के यहाँ एक पुत्ररत्न हुआ। इसी समय से बाबा के दर्शनार्थ लोगों का अधिक संख्या में आना प्रारंभ हो गया तथा उनकी कीर्त्ति भी दूरदूर तक फैलने लगी। अहमदनगर में भी उनकी अधिक प्रसिद्धि हो गई। तभी से नानासाहेब चांदोरकर, केशव चिदम्बर तथा अन्य कई भक्तों का शिरडी में आगमन होने लगा। बाबा दिनभर अपने भक्तों से घिरे रहते और रात्रि में जीर्ण-शीर्ण मसजिद में शयन करते थे। इस समय बाबा के पास कुल सामग्री - चिलम, तम्बाखू, एक टमरेल, एक लम्बी कफनी, सिर के चारों ओर लपेटने का कपड़ा और एक सटका था, जिसे वे सदा अपने पास रखते थे। सिर पर सफेद कपड़े का एक टुकड़ा वे सदा इस प्रकार बाँधते थे कि उसका एक छोर बायें कान पर से पीठ पर गिरता हुआ ऐसा प्रतीत होता था, मानो बालोंका जूड़ा हो। हफ्तों तक वे इन्हें स्वच्छ नहीं करते थे। पैर में कोई जूता या चप्पल भी नहीं पहिनते थे। केवल एक टाट का टुकड़ा ही अधिकांश दिन में उनके आसन का काम देता था। वे एक कौपीन धारण करते और सर्दी से बचने के लिये दक्षिण मुख हो धूनी से तपते थे। वे धूनी में लकड़ी के टुकड़े डाला करते थे तथा अपना अहंकार, समस्त इच्छायें और समस्त कुविचारों की उसमें आहुति दिया

करते थे। वे "अल्लाह मालिक" का सदा जिह्वा से उच्चारण किया करते थे। जिस मसजिद में वे पधारे थे, उसमें केवल दो कमरों के बराबर लम्बी जगह थी और यहीं सब भक्त उनके दर्शन करते थे। सन् १९१२ के पश्चात् कुछ परिवर्त्तन हुआ। पुरानी मसजिद का जीर्णोद्धार हो गया और उसमें एक फर्श भी बनाया गया। मसजिद में निवास करने के पूर्व बाबा दीर्घ काल तक तकिया में रहे। वे पैरों में घुँघरू बाँधकर प्रेमविह्वल होकर सुन्दर नृत्य व गायन भी करते थे।

जल का तेल में परिवर्त्तन

बाबा को प्रकाश से बड़ा अनुराग था। वे संध्या समय दूकानदारों से भिक्षा में तेल माँग लेते थे तथा दीपमालाओं से मसजिद को सजाकर, रात्रिभर दीपक जलाया करते थे। यह क्रम कुछ दिनों तक ठीक इसी प्रकार चलता रहा। अब बनिये तंग आ गये और उन्होंने संगठित होकर निश्चय किया कि आज कोई उन्हें तेल की भिक्षा न दे। नित्य नियमानुसार जब बाबा तेल माँगने पहुँचे तो प्रत्येक स्थान पर उनका नकारात्मक उत्तर से स्वागत हुआ। किसी से कुछ कहे बिना बाबा मसजिद को लौट आये और सूखी बत्तियाँ दियों में डाल दीं। बनिये तो बड़े उत्सुक होकर उनपर दृष्टि जमाये हुये थे। बाबा ने टमरेल उठाया, जिसमें बिलकुल थोड़ा सा तेल था। उन्होंने उसमें पानी मिलाया और वह तेल-मिश्रित जल वे पी गये। उन्होंने उसे पुनः टीनपाट में उगल दिया और वही तेलिया पानी दियों में डालकर उन्हें जला दिया। उत्सुक बनियों ने जब दीपकों को पूर्ववत् रात्रि भर जलते देखा, तब उन्हें अपने कृत्य पर बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने बाबा से क्षमा-याचना की। बाबा ने उन्हें क्षमा कर भविष्य में सत्य व्यवहार रखने के लिये सावधान किया।

मिथ्या गुरु जौहर अली

उपर्युक्त वर्णित कुश्ती के ५ वर्ष पश्चात् जौहर अली नाम के एक फकीर अपने शिष्यों के साथ राहाता आये। वे वीरभद्र मंदिर के समीप एक मकान में रहने लगे। फकीर विद्वान् था। कुरान की आयतें उसे कंठस्थ थी। उसका कंठ मधुर था। गाँव के बहुत से धार्मिक और श्रद्धालु जन उसके पास आने लगे और उसका यथायोग्य आदर होने लगा। लोगों से आर्थिक सहायता प्राप्त कर, उसने वीरभद्र मंदिर के पास एक ईदगाह बनाने का निश्चय किया। इस विषय को लेकर कुछ झगड़ा हो गया, जिसके फलस्वरूप जौहर अली राहाता छोड़ शिरडी आया और बाबा के साथ मसजिद में निवास करने लगा। उसने अपनी मधुर वाणी से लोगों के मन को हर लिया। वह बाबा को भी

अपना एक शिष्य बताने लगा। बाबा ने कोई आपत्ति नहीं की और उसका शिष्य होना स्वीकार कर लिया। तब गुरु और शिष्य दोनों पुनः राहाता में आकर रहने लगे। गुरु शिष्य की योग्यता से अनभिज्ञ था, परन्तु शिष्य गुरु के दोषों से पूर्ण परिचित था। इतने पर भी बाबा ने कभी उसका अनादर नहीं किया और पूर्ण लगन से अपना कर्त्तव्य निबाहते रहे और उसकी अनेक प्रकार से सेवा की। वे दोनों कभी-कभी शिरडी भी आया करते थे, परन्तु मुख्य निवास राहाता में ही था। श्री बाबा के प्रेमी भक्तों को उनका दूर राहाता में रहना अच्छा नहीं लगता था। इसलिये वे सब मिलकर बाबा को शिरडी वापस लाने के लिये गये। इन लोगों की ईदगाह के समीप बाबा से भेंट हुई और उन्हें अपने आगमन का हेतु बतलाया। बाबा ने उन लोगों को समझाया कि फकीर बड़े क्रोधी और दुष्ट स्वभाव के व्यक्ति हैं, वे मुझे नहीं छोड़ेंगे। अच्छा हो कि फकीर के आने के पूर्व ही आप लोग शिरडी लौट जायें। इस प्रकार वार्त्तालाप हो ही रहा था कि इतने में फकीर आ पहुँचे। इस प्रकार अपने शिष्य को वहाँ से ले जाने का कुप्रयत्न करते देखकर वे बहुत ही क्रुद्ध हुए। कुछ वादविवाद के पश्चात् स्थिति में परिवर्त्तन हो गया और अंत में यह निर्णय हुआ कि फकीर व शिष्य दोनों ही शिरडी में निवास करें और इसीलिये वे शिरडी में आकर रहने लगे। कुछ दिनों के बाद देवीदास ने गुरु की परीक्षा की और उसमें कुछ कमी पाई। चाँद पाटील की बारात के साथ जब बाबा शिरडी में आये थे, उससे १२ वर्ष पूर्व देवीदास लगभग १० या ११ वर्ष की अवस्था में शिरडी आये और हनुमान मंदिर में रहते थे। देवीदास सुडौल, सुन्दर आकृति तथा तीक्ष्ण बुद्धि के थे। वे त्याग की साक्षात्मूर्त्ति तथा अगाध ज्ञानी थे। बहुत-से सज्जन जैसे तात्या कोते, काशीनाथ व अन्य लोग, उन्हें अपने गुरु-समान मानते थे। लोग जौहर अली को उनके सम्मुख लाये। विवाद में जौहर अली बुरी तरह पराजित हुआ और शिरडी छोड़ वैजापूर को भाग गया। वह अनेक वर्षों के पश्चात् शिरडी आया और श्री साईबाबा की चरण-वन्दना की। उसका यह भ्रम कि "वह स्वयं गुरु था और श्री साईबाबा उसके शिष्य" अब दूर हो चुका था। श्री साईबाबा उसे गुरु-समान ही आदर करते थे, उसका स्मरण कर उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। इस प्रकार श्री साईबाबा ने अपने प्रत्यक्ष आचरण से आदर्श उपस्थित किया कि अहंकार से किस प्रकार छुटकारा पाकर शिष्य के कर्त्तव्यों का पालन कर, किस तरह आत्मानुभव की ओर अग्रसर होना चाहिये। ऊपर वर्णित कथा म्हालसापति के कथनानुसार है। अगले अध्याय में रामनवमी का त्यौहार, मसजिद की पहली हालत एवं पश्चात् उसके जीर्णोद्धार इत्यादि का वर्णन होगा।

॥ श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

अध्याय - ६

रामनवमी उत्सव व मसजिद का जीर्णोद्धार, गुरु के कर-स्पर्श की महिमा, रामनवमी-उत्सव, उर्स की प्राथमिक अवस्था और रूपान्तर एवं मसजिद का जीर्णोद्धार।

गुरु के कर-स्पर्श के गुण

जब सद्‌गुरु ही नाव के खिवैया हैं तो वे निश्चय ही कुशलता तथा सरलतापूर्वक इस भवसागर के पार उतार देंगे। 'सद्‌गुरु' शब्द का उच्चारण करते ही मुझे श्री साई की स्मृति आ रही है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे स्वयं मेरे सामने ही खड़े हैं और मेरे मस्तक पर उदी लगा रहे हैं। देखो, देखो, वे अब अपना वरद्-हस्त उठाकर मेरे मस्तक पर रख रहे हैं। अब मेरा हृदय आनन्द से भर गया है। मेरे नेत्रों से प्रेमाश्रु बह रहे हैं। सद्‌गुरु के कर-स्पर्श की शक्ति महान् आश्चर्यजनक है। लिंग (सूक्ष्म) शरीर, जो संसार को भस्म करने वाली अग्नि से भी नष्ट किया जा सकता है, वह केवल गुरु के कर-स्पर्श से ही पल भर में नष्ट हो जाता है। अनेक जन्मों के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति, जिन्हें धार्मिक और ईश्वरीय प्रसंगों में पूर्ण अरुचि है, उनके भी मन स्थिर हो जाते हैं। श्री साईबाबा के मनोहर रूप के दर्शन कर कंठ प्रफुल्लता से रुँध जाता है, आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है और जब हृदय भावनाओं से भर जाता है, तब सोऽहं भाव की जागृति होकर आत्मानुभव के आनन्द का आभास होने लगता है। मैं और तू का भेद (द्वैतभाव) नष्ट हो जाता है और तत्क्षण ही ब्रह्म के साथ अभिन्नता प्राप्त हो जाती है। जब मैं धार्मिक ग्रन्थों का पठन करता हूँ तो क्षण-क्षण में सद्‌गुरु की स्मृति हो आती है। बाबा राम या कृष्ण का रूप धारण कर मेरे सामने खड़े हो जाते हैं और स्वयं अपनी जीवन-कथा मुझे सुनाने लगते हैं। अर्थात् जब मैं भागवत का श्रवण करता हूँ, तब बाबा श्री कृष्ण का स्वरूप धारण कर लेते हैं

और तब मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि वे ही भागवत या भक्तों के कल्याणार्थ उद्धवगीता सुना रहे हैं। जब कभी भी मैं किसी से वार्त्तालाप किया करता हूँ तो मैं बाबा की कथाओं को ध्यान में लाता हूँ, जिससे उनका उपयुक्त अर्थ समझाने में सफल हो सकूँ। जब मैं लिखने के लिये बैठता हूँ, तब एक शब्द या वाक्य की रचना भी नहीं कर पाता हूँ, परन्तु जब वे स्वयं कृपा कर मुझसे लिखवाने लगते हैं, तब फिर उसका कोई अंत नहीं होता। जब भक्तों में अहंकार की वृद्धि होने लगती है तो वे शक्ति प्रदान कर उसे अहंकारशून्य बनाकर अंतिम ध्येय की प्राप्ति करा देते हैं तथा उसे संतुष्ट कर अक्षय सुख का अधिकारी बना देते हैं। **जो बाबा को नमन कर अनन्य भाव से उनकी शरण जाता है, उसे फिर कोई साधना करने की आवश्यकता नहीं है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष उसे सहज ही में प्राप्त हो जाते हैं।** [१] ईश्वर के पास पहुँचने के चार मार्ग हैं – कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति। इन सबमें भक्तिमार्ग अधिक कंटकाकीर्ण, गड्ढों और खाइयों से परिपूर्ण है। परन्तु यदि सद्‌गुरु पर विश्वास कर गड्ढों और खाइयों से बचते और पदानुक्रमण करते हुए सीधे अग्रसर होते जाओगे तो तुम अपने ध्येय अर्थात् ईश्वर के समीप आसानी से पहुँच जाओगे। श्री साईबाबा ने निश्चयात्मक स्वर में कहा है कि स्वयं ब्रह्म और उनकी विश्व उत्पत्ति, रक्षण और लय करने आदि की भिन्न-भिन्न शक्तियों के पृथकत्व में भी एकत्व है। इसे ही ग्रन्थकारों ने दर्शाया है। भक्तों के कल्याणार्थ श्री साईबाबा ने स्वयं जिन वचनों से आश्वासन दिया था, उनको नीचे उद्धृत किया जाता है –

"मेरे भक्तों के घर अन्न तथा वस्त्रों का कभी अभाव नहीं होगा। यह मेरा वैशिष्ट्य है कि जो भक्त मेरी शरण आ जाते हैं और अंतःकरण से मेरे उपासक हैं, उनके कल्याणार्थ मैं सदैव चिंतित रहता हूँ। [२] कृष्ण भगवान ने भी गीता में यही समझाया है। इसलिये भोजन तथा वस्त्र के लिये अधिक चिंता न करो। यदि कुछ माँगने की ही अभिलाषा है तो ईश्वर को ही भिक्षा में माँगो। सांसारिक मान व उपाधियाँ त्यागकर ईश-कृपा तथा अभयदान प्राप्त करो और उन्हीं के द्वारा सम्मानित होओ। सांसारिक विभूतियों से कुपथगामी मत बनो। अपने इष्ट को दृढ़ता से पकड़े रहो। समस्त इन्द्रियों और मन को ईश्वरचिंतन में प्रवृत्त रखो। किसी पदार्थ से आकर्षित न हो, सदैव मेरे स्मरण में मन को लगाये रखो, ताकि वह देह, सम्पत्ति व ऐश्वर्य की ओर प्रवृत्त न हो। तब चित्त स्थिर, शांत व निर्भय हो जायगा। इस प्रकार की मनःस्थिति प्राप्त होना इस बात का प्रतीक है कि वह सुसंगति में है। यदि चित्त की चंचलता नष्ट न हुई तो उसे एकाग्र नहीं किया जा सकता।"

१.-२ सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ – गीता १८/६६

बाबा के उपर्युक्त शब्दों को उद्धृत कर ग्रन्थकार शिरडी के रामनवमी उत्सव का वर्णन करता है। शिरडी में मनाये जाने वाले उत्सवों में रामनवमी अधिक धूमधाम से मनायी जाती है। अतएव इस उत्सव का पूर्ण विवरण जैसा कि साईलीला-पत्रिका (१९२५) के पृष्ठ १९७ पर प्रकाशित हुआ था, यहाँ संक्षेप में दिया जाता है –

प्रारम्भ

कोपरगाँव में श्री गोपालराव गुंड नाम के एक इन्सपेक्टर थे। वे बाबा के परम भक्त थे। उनकी तीन स्त्रियाँ थीं, परन्तु एक के भी संतान न थीं। श्री साईबाबा की कृपा से उन्हें एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। इस हर्ष के उपलक्ष्य में सन् १८९७ में उन्हें विचार आया कि शिरडी में मेला अथवा उरुस भरवाना चाहिये। उन्होंने यह विचार शिरडी के अन्य भक्त-तात्या पाटील, दादा कोते पाटील और माधवराव के समक्ष विचारणार्थ प्रगट किया। उन सभी को यह विचार अति रुचिकर प्रतीत हुआ तथा उन्हें बाबा की भी स्वीकृति और आश्वासन प्राप्त हो गया। उरुस भरने के लिये सरकारी आज्ञा आवश्यक थी। इसलिये एक प्रार्थना-पत्र कलेक्टर के पास भेजा गया, परन्तु ग्राम कुलकर्णी (पटवारी) के आपत्ति उठाने के कारण स्वीकृति प्राप्त न हो सकी। परन्तु बाबा का आश्वासन तो प्राप्त हो ही चुका था, अतः पुनः प्रयत्न करने पर स्वीकृति प्राप्त हो गई। बाबा की अनुमति से रामनवमी के दिन उरुस भरना निश्चित हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ निष्कर्ष ध्यान में रख कर ही उन्होंने ऐसी आज्ञा दी। अर्थात् उरुस व रामनवमी के उत्सवों का एकीकरण तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता, जो भविष्य की घटनाओं से ही स्पष्ट है कि यह ध्येय पूर्ण सफल हुआ। प्रथम बाधा तो किसी प्रकार हल हुई। अब द्वितीय कठिनाई जल के अभाव की उपस्थित हुई। शिरडी तो एक छोटा सा ग्राम था और पूर्व काल से ही वहाँ जल का अभाव बना रहता था। गाँव में केवल दो कुएँ थे, जिनमें से एक तो प्रायः सूख जाया करता था और दूसरे का पानी खारा था। बाबा ने उसमें फूल डालकर उसके खारे जल को मीठा बना दिया। लेकिन एक कुएँ का जल कितने लोगों को पर्याप्त हो सकता था? इसलिये तात्या पाटील ने बाहर से जल मँगवाने का प्रबन्ध किया। लकड़ी व बाँसों की कच्ची दूकानें बनाई गईं तथा कुश्तियों का भी आयोजन किया गया। गोपालराव गुंड के एक मित्र दामू-अण्णा कासार अहमदनगर में रहते थे। वे भी संतानहीन होने के कारण दुःखी थे। श्री साईबाबा की कृपा से उन्हें

भी एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई थी। श्री गुंड ने उनसे एक ध्वज देने को कहा। एक ध्वज जागीरदार श्री. नानासाहेब निमोणकर ने भी दिया। ये दोनों ध्वज बड़े समारोह के साथ गाँव में से निकाले गये और अंत में उन्हें मसजिद, जिसे बाबा 'द्वारकामाई' के नाम से पुकारते थे, उसके कोनों पर फहरा दिया गया। यह कार्यक्रम अभी भी पूर्ववत् ही चल रहा है।

चन्दन समारोह

इस मेले में एक अन्य कार्यक्रम का भी श्री गणेश हुआ, जो चन्दनोत्सव के नाम से प्रसिद्ध है। यह कोरहल के एक मुस्लिम भक्त श्री. अमीर सक्कर दलाल के मस्तिष्क की सूझ थी। प्रायः इस प्रकार का उत्सव सिद्ध मुस्लिम सन्तों के सम्मान में ही किया जाता है। बहुत-सा चन्दन घिसकर और बहुत सी चन्दन-धूप थालियों में भरी जाती है तथा लोहबान जलाते हैं और अंत में उन्हें मसजिद में पहुँचा कर जुलूस समाप्त हो जाता है। थालियों का चन्दन और धूप नीम पर और मसजिद की दीवारों पर डाल दिया जाता है। इस उत्सव का प्रबन्ध प्रथम तीन वर्षों तक श्री. अमीर सक्कर ने किया और उनके पश्चात् उनकी धर्मपत्नी ने किया। इस प्रकार हिन्दुओं द्वारा ध्वज व मुसलमानों के द्वारा चन्दन का जुलूस एक साथ चलने लगा और अभी तक उसी तरह चल रहा है।

प्रबन्ध

रामनवमी का दिन श्री साईबाबा के भक्तों को अत्यन्त ही प्रिय और पवित्र है। कार्य करने के लिये बहुत से स्वयंसेवक तैयार हो जाते थे और वे मेले के प्रबन्ध में सक्रिय भाग लेते थे। बाहर के समस्त कार्यों का भार तात्या पाटील और भीतर के कार्यों को श्री साईबाबा की एक परम भक्त महिला राधाकृष्ण माई सम्हालती थीं। इस अवसर पर उनका निवासस्थान अतिथियों से परिपूर्ण रहता और उन्हें सब लोगों की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना पड़ता था। साथ ही वे मेले की समस्त आवश्यक वस्तुओं का भी प्रबन्ध करती थीं। दूसरा कार्य जो वे स्वयं खुशी से किया करतीं, वह था मसजिद की सफाई करना, चूना पोतना आदि। मसजिद की फर्श तथा दीवारें निरन्तर धूनी जलने के कारण काली पड़ गयी थी। जब रात्रि को बाबा चावड़ी में विश्राम करने चले जाते, तब वे यह कार्य कर लिया करती थीं। समस्त वस्तुएँ धूनी सहित बाहर निकालनी पड़ती थीं और सफाई व पुताई हो जाने के पश्चात् वे पूर्ववत् सजा दी जाती थीं। बाबा का अत्यन्त प्रिय कार्य गरीबों को भोजन कराना भी इस कार्यक्रम का एक अंग था। इस

कार्य के लिये वृहद् भोज का आयोजन किया जाता था और अनेक प्रकार की मिठाइयाँ बनाई जाती थीं। यह सब कार्य राधाकृष्णमाई के निवासस्थान पर ही होता था। बहुत से धनाढ्य व श्रीमंत भक्त इस कार्य में आर्थिक सहायता पहुँचाते थे।

उर्स का रामनवमी के त्यौहार में समन्वय

सब कार्यक्रम इसी तरह उत्तम प्रकार से चलता रहा और मेले का महत्त्व शनैः शनैः बढ़ता ही गया। सन् १९११ में एक परिवर्त्तन हुआ। एक भक्त कृष्णराव जोगेश्वर भीष्म (श्री साई सगुणोपासना के लेखक) अमरावती के दादासाहेब खापर्डे के साथ मेले के एक दिन पूर्व शिरडी के दीक्षित-वाड़े में ठहरे। जब वे दालान में लेटे हुए विश्राम कर रहे थे, तब उन्हें एक कल्पना सूझी। इसी समय श्री. लक्ष्मणराव उपनाम काका महाजनी पूजन सामग्री लेकर मसजिद की ओर जा रहे थे। उन दोनों में विचार-विनिमय होने लगा और उन्होंने सोचा कि शिरडी में उरुस व मेला ठीक रामनवमी के दिन ही भरता है, इसमें अवश्य ही कोई गूढ़ रहस्य निहित है। रामनवमी का दिन हिन्दुओं को बहुत ही प्रिय है। कितना अच्छा हो, यदि रामनवमी उत्सव (अर्थात् श्री राम का जन्म दिवस) का भी श्री गणेश कर दिया जाय? काका महाजनी को यह विचार रुचिकर प्रतीत हुआ। अब मुख्य कठिनाई हरिदास के मिलने की थी, जो इस शुभ अवसर पर कीर्त्तन व ईश्वर-गुणानुवाद कर सकें। परन्तु भीष्म ने इस समस्या को हल कर दिया। उन्होंने कहा कि मेरा स्वरचित 'राम आख्यान', जिसमें रामजन्म का वर्णन है, तैयार हो चुका है। मैं उसका ही कीर्त्तन करूँगा और तुम हारमोनियम पर साथ करना तथा राधाकृष्णमाई सुंठवड़ा (सोंठ का शक्कर मिश्रित चूर्ण) तैयार कर देंगी। तब वे दोनों शीघ्र ही बाबा की स्वीकृति प्राप्त करने हेतु मसजिद को गये। बाबा तो अंतर्यामी थे। उन्हें तो सब ज्ञान था कि वाड़े में क्या- क्या हो रहा है। बाबा ने महाजनी से प्रश्न किया कि "वहाँ क्या चल रहा था?" इस आकस्मिक प्रश्न से महाजनी घबड़ा गये और बाबा के शब्दों का अभिप्राय न समझ सकने के कारण वे स्तब्ध होकर खड़े रह गये। तब बाबा ने भीष्म से पूछा कि "क्या बात है?" भीष्म ने रामनवमी-उत्सव मनाने का विचार बाबा के समक्ष प्रस्तुत किया तथा स्वीकृति देने की प्रार्थना की। बाबा ने भी सहर्ष अनुमति दे दी। सभी भक्त हर्षित हुये और रामजन्मोत्सव मनाने की तैयारियाँ करने लगे। दूसरे दिन रंग-बिरंगी झंडियों से मसजिद सजा दी गई। श्रीमती राधाकृष्णमाई ने एक पालना लाकर बाबा के आसन के समक्ष रख दिया और फिर उत्सव प्रारम्भ हो गया। भीष्म कीर्त्तन करने को खड़े हो गये और महाजनी हारमोनियम पर उनका साथ करने लगे। तभी बाबा ने

महाजनी को बुलावा भेजा। यहाँ महाजनी शंकित थे कि बाबा उत्सव मनाने की आज्ञा देंगे भी या नहीं। परन्तु जब वे बाबा के समीप पहुँचे तो बाबा ने उनसे प्रश्न किया "यह सब क्या है, यह पालना क्यों रखा गया है?" महाजनी ने बतलाया कि रामनवमी का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया है और इसी कारण यह पालना यहाँ रखा गया है। बाबा ने निम्बर पर से दो हार उठाये। उनमें से एक हार तो उन्होंने काकाजी के गले में डाल दिया तथा दूसरा भीष्म के लिये भेज दिया। अब कीर्त्तन प्रारम्भ हो गया था। कीर्त्तन समाप्त हुआ, तब 'श्री राजाराम' की उच्च स्वर से जयजयकार हुई। कीर्त्तन के स्थान पर गुलाल की वर्षा की गई। जब हर कोई प्रसन्नता से झूम रहा था, तब अचानक ही एक गर्जती हुई ध्वनि उनके कानों पर पड़ी। वस्तुतः जिस समय गुलाल की वर्षा हो रही थी तो उसमें के कुछ कण अनायास ही बाबा की आँख में चले गये। तब बाबा एकदम क्रुद्ध होकर उच्च स्वर में अपशब्द कहने व कोसने लगे। यह दृश्य देखकर सब लोग भयभीत होकर सिटपिटाने लगे। बाबा के स्वभाव से भली भाँति परिचित अंतरंग भक्त भला इन अपशब्दों का कब बुरा माननेवाले थे? बाबा के इन शब्दों तथा वाक्यों को उन्होंने आशीर्वाद समझा। उन्होंने सोचा कि आज राम का जन्मदिन है, अतः रावण का नाश, अहंकार एवं दुष्ट प्रवृत्तिरूपी राक्षसों के संहार के लिये बाबा को क्रोध उत्पन्न होना सर्वथा उचित ही है। इसके साथ-साथ उन्हें यह विदित था कि जब कभी भी शिरडी में कोई नवीन कार्यक्रम रचा जाता था, तब बाबा इसी प्रकार कुपित या क्रुद्ध हो ही जाया करते थे। इसलिये वे सब स्तब्ध ही रहे। इधर राधाकृष्णमाई भी भयभीत थीं कि कहीं बाबा पालना न तोड़-फोड़ डालें; इसलिये उन्होंने काका महाजनी से पालना हटाने के लिए कहा। परन्तु बाबा ने ऐसा करने से उन्हें रोका। कुछ समय पश्चात् बाबा शांत हो गये और उस दिन की महापूजा और आरती का कार्यक्रम निर्विघ्न समाप्त हो गया। उसके बाद काका महाजनी ने बाबा से पालना उतारने की अनुमति माँगी। परन्तु बाबा ने अस्वीकृत करते हुये कहा कि अभी उत्सव सम्पूर्ण नहीं हुआ है। अगले दिन गोपाल काला उत्सव मनाया गया, जिसके पश्चात् बाबा ने पालना उतारने की आज्ञा दे दी। उत्सव में दही मिश्रित पौहा एक मिट्टी के बर्त्तन में लटका दिया जाता है और कीर्त्तन समाप्त होने पर वह बर्त्तन फोड़ दिया जाता है, और प्रसाद के रूप में वह पौहा सब को वितरित कर दिया जाता है, जिस प्रकार कि श्रीकृष्ण ने ग्वालों के साथ किया था। रामनवमी उत्सव इसी तरह दिन भर चलता रहा। दिन के समय दो ध्वजों का जुलूस और रात्रि के समय चन्दन का जुलूस बड़ी धूमधाम और समारोह के साथ निकाला गया। इस समय के पश्चात् ही उरुस का उत्सव रामनवमी के उत्सव में परिवर्त्तित हो

गया। अगले वर्ष (सन् १९१२) से रामनवमी के कार्यक्रमों की सूची में वृद्धि होने लगी। श्रीमती राधाकृष्णमाई ने चैत्र की प्रतिपदा से नामसप्ताह प्रारम्भ कर दिया। (लगातार दिन रात ७ दिन तक भगवत् नाम लेना 'नामसप्ताह' कहलाता है।) सब भक्त इसमें बारी-बारी से भाग लेते थे। वे भी प्रातःकाल सम्मिलित हो जाया करती थीं। देश के सभी भागों में रामनवमी का उत्सव मनाया जाता है। इसलिये अगले वर्ष हरिदास के मिलने की कठिनाई पुनः उपस्थित हुई, परन्तु उत्सव के पूर्व ही यह समस्या हल हो गई। पाँच-छः दिन पूर्व श्री. महाजनी की बाला बुवा से अकस्मात् भेंट हो गई। बुवासाहेब 'आधुनिक तुकाराम' के नाम से प्रसिद्ध थे और इस वर्ष कीर्त्तन का कार्य उन्हें ही सौंपा गया। अगले वर्ष सन् १९१३ में श्री हरिदास (सातारा जिले के बाला बुवा सातारकर) बृहद्सिद्ध कवटे ग्राम में प्लेग का प्रकोप होने के कारण अपने गाँव में हरिदास का कार्य नहीं कर सकते थे। इस वर्ष वे शिरडी में आये। काकासाहेब दीक्षित ने उनके कीर्त्तन के लिये बाबा से अनुमति प्राप्त की। बाबा ने भी उन्हें यथेष्ट पुरस्कार दिया। सन् १९१४ से हरिदास की कठिनाई बाबा ने सदैव के लिये हल कर दी। उन्होंने यह कार्य स्थायी रूप से दासगणू महाराज को सौंप दिया। तब से वे इस कार्य को उत्तम रीति से सफलता और विद्वत्तापूर्वक पूर्ण लगन से निभाते रहे। सन् १९१२ से उत्सव के अवसर पर लोगों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। चैत्र शुक्ल अष्टमी से द्वादशी तक शिरडी में लोगों की संख्या में इतनी अधिक वृद्धि हो जाया करती थी, मानो मधुमक्खी का छत्ता ही लगा हो। दुकानों की संख्या में बढ़ती हो गई। प्रसिद्ध पहलवानों की कुश्तियाँ होने लगीं। गरीबों को वृहद् स्तरपर भोजन कराया जाने लगा। राधाकृष्णमाई के घोर परिश्रम के फलस्वरूप शिरडी को संस्थान का रूप मिला। सम्पत्ति भी दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। एक सुन्दर घोड़ा, पालकी, रथ और चाँदी के अन्य पदार्थ, बर्त्तन, पात्र, शीशे इत्यादि भक्तों ने उपहार में भेंट किये। उत्सव के अवसर पर हाथी भी बुलाया जाता था। यद्यपि सम्पत्ति बहुत बढ़ी, परन्तु बाबा उन सब से सदा निरपेक्ष ही रहते थे। वे सदैव उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते और सदैव की भाँति ही साधारण वेशभूषा धारण करते थे। यह ध्यान देने योग्य है कि जुलूस तथा उत्सव में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही साथ-साथ कार्य करते थे। परन्तु आज तक न उनमें कोई विवाद हुआ और न कोई मतभेद ही। पहलेपहल तो लोगों की संख्या ५००० - ७००० के लगभग ही होती थी। परन्तु किसी-किसी वर्ष तो यह संख्या ७५००० तक पहुँच जाती थी। फिर भी न कभी कोई बीमारी फैली और न कोई दंगा ही हुआ।

मसजिद का जीर्णोद्धार

जिस प्रकार उरुस या मेला भराने का विचार प्रथमतः श्री. गोपाल गुंड को आया था, उसी प्रकार मसजिद के जीर्णोद्धार का विचार भी प्रथमतः उन्हें ही आया। उन्होंने इस कार्य के निमित्त पत्थर एकत्रित कर उन्हें वर्गाकार करवाया। परन्तु इस कार्य का श्रेय उन्हें प्राप्त नहीं होना था। वह सुयश तो नानासाहेब चाँदोरकर के लिये ही सुरक्षित था और फर्श का कार्य काकासाहेब दीक्षित के लिये। प्रारम्भ में बाबा ने इन कार्यों के लिये स्वीकृति नहीं दी, परन्तु स्थानीय भक्त म्हालसापति के आग्रह करने से बाबा की स्वीकृति प्राप्त हो गई और एक रात में ही मसजिद का पूरा फर्श बन गया। अभी तक बाबा एक टाट के ही टुकड़े पर बैठते थे। अब उस टाट के टुकड़े को वहाँ से हटाकर, उसके स्थान पर एक छोटी सी गादी बिछा दी गई। सन् १९११ में सभामंडप भी घोर परिश्रम के उपरांत ठीक हो गया। मसजिद का आँगन बहुत छोटा तथा असुविधाजनक था। काकासाहेब दीक्षित आँगन को बढ़ाकर उसके ऊपर छप्पर बनाना चाहते थे। यथेष्ठ द्रव्यराशि व्यय कर उन्होंने लोहे के खम्भे, बल्लियाँ व कैंचियाँ मोल लीं और कार्य भी प्रारम्भ हो गया। दिन-रात परिश्रम कर भक्तों ने लोहे के खम्भे जमीन में गाड़े। जब दूसरे दिन बाबा चावड़ी से लौटे, उन्होंने उन खम्भों को उखाड़ कर फेंक दिया और अति क्रोधित हो गये। वे एक हाथ से खम्भा पकड़ कर उसे उखाड़ने लगे और दूसरे हाथ से उन्होंने तात्या का साफा उतार लिया और उसमें आग लगाकर गड्ढे में फेंक दिया। बाबा के नेत्र जलते हुए अंगारे के सदृश लाल हो गये। किसी को भी उनकी ओर आँख उठा कर देखने का साहस नहीं होता था। सभी बुरी तरह भयभीत होकर विचलित होने लगे कि अब क्या होगा? भागोजी शिंदे (बाबा के एक कोढ़ी भक्त) कुछ साहस कर आगे बढ़े, पर बाबा ने उन्हें धक्का देकर पीछे ढकेल दिया। माधवराव की भी वही गति हुई। बाबा उनके ऊपर भी ईंट के ढेले फेंकने लगे। जो भी उन्हें शान्त करने गया, उसकी वही दशा हुई।

कुछ समय के पश्चात् क्रोध शांत होने पर बाबा ने एक दुकानदार को बुलाया और एक जरीदार फेंटा खरीद कर अपने हाथों से उसे तात्या के सिर पर बाँधने लगे, जैसे उन्हें विशेष सम्मान दिया गया हो। यह विचित्र व्यवहार देखकर भक्तों को आश्चर्य हुआ। वे समझ नहीं पा रहे थे कि किस अज्ञात कारण से बाबा इतने क्रोधित हुए। उन्होंने तात्या को क्यों पीटा और तत्क्षण ही उनका क्रोध क्यों शांत हो गया? बाबा कभी-कभी अति गंभीर तथा शांत मुद्रा में रहते थे और बड़े प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप किया करते थे। परन्तु अनायास ही बिना किसी गोचर कारण के वे क्रोधित हो जाया करते थे।

ऐसी अनेक घटनाएँ देखने में आ चुकी हैं, परन्तु मैं इसका निर्णय नहीं कर सकता कि उनमें से कौन सी लिखूँ और कौन सी छोड़ूँ। अतः जिस क्रम से वे याद आती जायेंगी, उसी प्रकार उनका वर्णन किया जायगा। अगले अध्याय में बाबा यवन हैं या हिन्दू, इसका विवेचन किया जायेगा तथा उनके योग, साधन, शक्ति और अन्य विषयों पर भी विचार किया जायेगा।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

सप्ताह पारायणः प्रथम विश्राम